नैषधीयचरित पर छान्दस प्रभाव

डा. मनुलता शर्मा

सर्गादौ स्फुरतां समग्रजगतां यः श्रेयसे जज्ञिवान्
अर्थानभ्युदयाय संप्रथितवांस्तांस्तांस्तु वैज्ञानिकान् ।
यश्चोच्चावचभाववान् विविधसद्विद्याभिरुद्योतवान्
विश्वस्मिन् भुवने स वेदभगवान् भूयो जरीजृम्भताम् ॥

(प्रबन्धरत्नाकरः डा. रमेश चन्द्र शुक्ल पृ. 12)

नमोऽस्तु तस्यै श्रुतये यां दुहन्ति पदे पदे ।
ऋषयः शास्त्रकाराश्च कवयश्च यथामतिः ॥

(काव्यमीमांसा, अष्टम अध्याय)

मधुवर्षी, रसनिस्यन्दी, 'शृङ्गारामृतशीतगुः' काव्य के प्रणेता, पदविन्यास एवं छन्दः कौशल के प्रभूत प्रावीण्य में पारङ्गत, विद्यावैशद्य एवं वैदुष्य के प्रतिमान श्रीहर्ष संस्कृत महाकवियों की अवलि के समुज्वल हीरक हैं। 'वृहत्त्रयी' में परिगणित उनका महाकाव्य **'नैषधीयचरितम्'** वैदुष्य का 'निकषग्रावा' है। नल-दमयन्ती की प्रणय कथा के माध्यम से रस की अजस्र स्रोतस्विनी प्रवाहित करने वाले, भारतीय संस्कृति के चिरन्तन आदर्शों को कान्तासम्मित अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले इस सारस्वत कवि के साहित्याम्बुधि का मंथन जिज्ञासु गवेषकों ने विविध विचार रश्मियों से किया है और उसके सुधासार से सहृदयों को समाप्यायित किया है। चमत्कृतिकारी रूपचन्द्रिका के चाकचिक्य, मनोमुग्धकारी रस परिपाक, मोहक विलास, महनीय आभिजात्य, विपुल वैभव, सुशोभन शील, मानसिक मृदुता, चारित्रिक सुषमा एवं शाश्वत प्रेरणादायी दार्शनिक चिन्तन व उपदेशों का अविराम प्रवाह समेटे महाकवि श्रीहर्ष की मूलवर्तिनी वैचारिक तरङ्गें कैसी हैं, यह जिज्ञासा सहज उठती है। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि शृङ्गार की आह्लादैकमयी रस वीणा को तन्त्रीनिनादित करने वाले इस महाकवि के काव्योदधि की मूलवर्तिनी मान्यताएं श्रुतिस्मृत्यनुमोदित पुराणेतिहास समर्थित आदर्श, सिद्धान्त व व्यवस्थाएं ही हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में उनकी विविध विषयिणी आस्थाओं एवं विवरणों को वेदानुशंसित दृष्टि से विवेचित किया गया है। नैषध में अनेक स्थलों पर वैदिक यज्ञ-यागादिक अनुष्ठानों, तद्गत विहित विधानों का आश्रयण लेकर श्रीहर्ष ने वैदिक धर्म व संस्कृति के प्रति अपनी अभिज्ञता व आस्था का सुष्ठु परिचय दिया है। राजा व प्रजा के चित्रणों, तपः स्वाध्याय के प्रसंगों, वर्णाश्रम धर्म के अनुपालन, सामाजिक आदर्शों के चित्रण तथा लोक जीवन की दिनचर्या के निरूपण में यह आस्था स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हुई है। कुछ प्रसङ्ग समुद्धरणीय हैं। पापी, मत्सरी, दुराग्रही, सद्गुणद्वेषी कलि सर्वगुणाधिपति निषधेश नल के द्वारा दमयन्ती का वरण कर लिए जाने के कारण मात्सर्य भाव से दूषित हो उनका राज्य, वैभव, मान-प्रतिष्ठा नष्ट करने के उपक्रम में राजधानी पहुँचता है, वहां राजा व प्रजा द्वारा अनुपालित वैदिक धर्म के विविध अनुष्ठानों को देखकर संत्रस्त व विचलित हो उठता है। कलि की इस उद्विग्न मनोदशा के चित्रण की पृष्ठभूमि में नैषध के सप्तदश सर्ग में विभिन्न श्रुत्यनुमोदित परम्पराओं व व्यवस्थाओं का चित्रण है—

वेदाध्ययन के पदपाठ, क्रमपाठ, संहितापाठ आदि पाठभेदों का वर्णन इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम दर्शनीय है। अहंकारी, दारुणकर्मा कलि निषधाधिपति की राजधानी में वेदपाठी ब्राह्मणों के मुख से उच्चार्यमाण पदसंज्ञक मन्त्र भागों को सुनकर एक पग भी आगे नहीं बढ़सका[1], श्रुतिपाठकों के मुख से 'क्रमसंज्ञक' मन्त्र भाग को सुनते हुए उसका मन अत्यन्त सङ्कुचित हो गया।[2] सङ्कुचित मन व गति वाला होने पर भी वह कलि दुर्बुद्धि के कारण प्रयासरत रहा व साडम्बर

तब तक शीघ्रगामी रहा जब तक कि उसने वेदपाठियों के कण्ठ से 'पद-क्रम' की अवस्था से विलक्षण 'संहितापाठ' को नहीं सुन लिया—'न वेदपाठि कण्ठेभ्यो यावदश्रावि संहिता[3] यज्ञीय घृत की गन्ध व धूम से उसके नासापुट व नेत्र नष्ट से होने लगे।[4] यज्ञाग्नि के तीव्र ताप से वह कलि उस प्रकार सन्तप्त हुआ जैसे बन्द किए गए दो पात्रों के बीच रखी औषधि 'पुटपाक' अपने चारों ओर जलायी गई अग्नि के सन्ताप से सन्तप्त होती है। वापी-तडागादि पूर्त कर्मों के तरङ्ग रूपी पङ्खों की वायु से उस कलि का प्रत्येक अङ्ग मानों काटा हुआ सा हो गया।[5] वैदिक विद्वानों को पाकर उनके तप: प्रभाव जन्य ताप से उसी प्रकार दूर हट गया जैसे पानी को चाहता व्यक्ति अग्नि के ताप से दूर हट जाता है।[6]

निषधेश नल की नगरी धार्मिक जनों से परिव्याप्त थी। स्थान-स्थान पर होने वाले वैदिक अनुष्ठानों, ब्रह्मविद्यामयी गायत्री के स्तवन, 'पराक्' अर्थात् बारह दिन तक उपवास करने वाले व्रतियों, मासोपासी जनों, पलाशदण्ड, मेखलाधारी ब्रह्मचारियों, स्रुवा, हवि, पुरोडाश, यूपस्तम्भों के उपायनों, वेदाध्यायी छात्रों की ब्रह्माञ्जलियों, गृहस्थों की वेदयष्टियों, संन्यासियों की वेत्रयष्टियों, त्रिकालिक सन्ध्याओं, अघमर्षण मन्त्रों के पाठों, तप, स्वाध्याय, सत्यभाषण, आन्तरिक विशुद्धि एवं याज्ञिक चर्याओं से सम्भूषित उस नगरी के वर्णन में वेदकालीन संस्कृति की सुवास सहज रूप में मनोरम हो उठी है। कुछ प्रसङ्ग समवलोकनीय है—

वेदों में विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले नाना प्रकार के कर्मकाण्डों का विधान है। दर्श, पौर्णमास, अग्निष्टोम, सोमयज्ञ, सौत्रामणी, सर्वस्वार, महाव्रत, अश्वमेध आदि यज्ञ इसी कोटि के हैं। नल की नगरी में इन याज्ञिक प्रक्रियाओं का विधिवत् अनुपालन होता था। तभी तो उस नगरी में प्रविष्ट कलि अपने निवास हेतु उपयुक्त पात्र व स्थान को खोजता हुआ 'दर्श' तथा 'अग्निष्टोम' यागों को देखकर अति दु:खित हुआ, 'पौर्णमास' यज्ञ के सम्पादन को लक्ष्य कर उसे चक्कर आ गया तथा 'सोमयज्ञ' की प्रक्रियाओं को निष्पन्न होते देखकर उसे मृत्यु तुल्य कष्ट का अनुभव हुआ।[7]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'सौत्रामणी' नामक यज्ञ जिसमें देवजन बर्हिष् (कुश) पर बैठते हैं, शष्प, तोक्म, लाजा, व्रीहि, श्यामाक तथा नग्रहु नामक 26 अन्य औषधियों से आयुर्वेदानुसार बनी हुई सुरा (का वर्णन है), सम्पन्न होता है। **शुक्लयजुर्वेद** माध्यन्दिन संहिता के 19 से 21 अध्यायों में इस 'सौत्रामणी' यज्ञ का विस्तृत निरूपण उपलब्ध होता है। महान्त ऋत्विज (महिषा:) नमस्कारों अथवा अन्नों के द्वारा 'सौत्रामणी' यज्ञ को बढ़ाते अथवा प्राप्त कराते हैं। इसमें सुरा होती है, देव कुशों पर बैठते हैं, सुन्दर वीर ऋत्विज होते हैं जो स्वर्गस्थ देवताओं में सोम धारण करते है, वहाँ इस प्रकार की प्रार्थना युक्त कामनाएं की जाती हैं कि हम सुन्दर अर्चन अथवा मन्त्रों अथवा अन्नों वाले होते हुए उस यज्ञ में इन्द्र का यजन करते हुए हर्षयुक्त हों। हे सुरे! औषधियों में वर्तमान जो तुम्हारा रस एकीकृत है तथा सुरा के साथ अभिषुत सोम का जो बल है, तुम उस हर्षोत्पादक रस और बल से यजमान, सरस्वती, अश्विनीकुमारों, इन्द्र और अग्नि को प्रसन्न करो। असुरपुत्र नमुचि के पास से जिस सोम का अपहरण करके अश्विनी कुमारों और सरस्वती ने इन्द्र के भैषज्य के लिए अथवा बल के लिए अभिषव किया, मैं इस यज्ञ में उसी शुद्ध और रसीले तथा परमैश्वर्य दायक उज्ज्वल सोम का भक्षण करता हूँ। रसीले अभिषुत सोम का जो अंश यहाँ सुरा में लिप्त हो गया, जिसे कर्मों द्वारा शुद्ध करके इन्द्र ने पिया मैं यहां उस दीप्तिमान् सोम का शुद्ध मन से भक्षण करता हूँ।[8] नैषध में इस मदिरा या सुरा पान की विधि का भी उल्लेख है। नलपुरी में कलि को कोई ब्राह्मण कहीं मदिरा ग्रहण करता हुआ दिखाई दिया, वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि उसे कहीं तो आश्रय मिला। किन्तु उस ब्राह्मण को 'सौत्रामणी' याग में मदिरा स्वीकार करने की विधि का पालन करते हुए देखकर वह बड़ा व्यथित हुआ।[9] 'वामदेव्य सामोपासना' के अङ्ग रूप में वेद का विधान है—'वामदेवोपासने सर्वा: स्त्रिय: उपसीदन्ति, न काञ्चन स्वयमागतां परिहरेत्[10] अर्थात् समागम प्रयोजन वाली तथा अपनी शय्या पर प्राप्त हुई स्त्री का परित्याग न करे। नैषध में इसका भी उल्लेख है—

नैषधपुरी में उपासक के समीप स्वत: आई हुई अगम्या अथवा गम्या सभी के साथ रमण करने वाली स्त्री के

कामुक किसी पुरुष को देखकर 'कलि' बड़ा सन्तुष्ट हुआ कि इस व्यभिचारी का आश्रय लेकर मैं रह सकूंगा किन्तु दूसरे ही क्षण उसको 'वामदेव्य साम' नाम की ब्रह्म विद्या का उपासक जानकर वह मुरझा गया।[11]

वेदविधान है कि किसी यज्ञ के अनुष्ठान में दीक्षित होने पर यजमान अनुष्ठान काल तक दान, होम, आदि नित्य नैमित्तिक कर्मों से मुक्त रहता है—'दीक्षितो न ददाति न जुहोति न वदति'।[12]

नल नगरी में 'कलि' किसी ब्राह्मण को अपने नित्य नैमित्तिक कर्म न करते हुए देख अतीव प्रसन्न हुआ कि चलो, मुझे इसके रूप में रहने का आश्रय प्राप्त हुआ। किन्तु उस ब्राह्मण को यज्ञ में दीक्षित होने के कारण दान-होमादि नित्य नैमित्तिक कर्मों का त्यागी जान कर उसे निराश होना पड़ा—

यजमानं निरूप्यैनं दूरं दीनमुखोऽद्रवत्[13]

'सर्वस्वार' यज्ञ में पशुमन्त्र से संस्कार प्राप्त व्यक्ति का अपने को मारकर यज्ञभागार्पण करने पर उस आत्महत्या को धर्म विरुद्ध नहीं माना जाता, ऐसी वैदिकी व्यवस्था है। श्रीहर्ष ने भी इस विधि कि ओर संकेत किया है—'कलि' उस निषधपुर में किसी व्यक्ति को आत्महत्या करते देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि कहीं तो अधर्माचरण दृष्टिगत हुआ। लेकिन जब उसे ज्ञात हुआ कि यह तो 'सर्वस्वार' नामक वैदिक यज्ञ कर रहा है जिसमें आत्मवध की स्वीकृति प्राप्त है तो उसे बड़ा दु:ख हुआ ।[14]

इसी प्रकार किसी ब्रह्मचारी व पुंश्चली स्त्री के रत अर्थात् अश्लील सम्भाषण को देखते हुए कलि को 'यज्ञ कार्य' भांड़ों का ताण्डव ही प्रतीत हुए। किन्तु कलि महामूर्ख था उसने 'महाव्रते ब्रह्मचारि पुंश्चल्यो: सम्प्रवाद:' इस उपनिषद् वाक्य के तात्पर्य को न समझ पाने को कारण ही इस प्रकार की धारणा बना ली थी।[15]

पापप्रशमन के लिए 'अघमर्षण' सूक्त प्रसिद्ध है।[16] जहाँ चुलूक में जल लेकर 'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत'[17] इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक नासिका स्पर्श करते हुए क्रिया विशेष सम्पादित होती है। नैषध में श्रीहर्ष ने इसका वर्णन भी किया है। नलपुरी में भ्रमण रत कलि ने ब्राह्मणों की त्रिकालिक सन्ध्याओं में अघमर्षण की क्रियाओं को देखकर अपने नेत्रों को ही निकाल देना चाहा—

त्रिसन्ध्यं तत्र विप्राणां स पश्यन्नघमर्षणम् ।
वरमैच्छद् दृशोरेव निजयोरपकर्षणम् ॥[18]

वेदाध्ययन के आरम्भ तथा अन्त में गुरु के चरणद्वय की वन्दना कर पढ़ते समय हाथ जोड़ने की क्रिया 'ब्रह्माञ्जलि' कहीं जाती है। इन ब्रह्माञ्जलियों का वर्णन भी नैषधकार की दृष्टि से परे नहीं रह सका है।

कलि ने नैषध प्रदेश में शिष्यों की जितनी ब्रह्माञ्जलियों को देखा उसके हृदय से उतनी ही रक्ताञ्जलियाँ मानों निकल पड़ी—

अपश्यद् यावतो ब्रह्मविदां ब्रह्माञ्जलीनसौ ।
उदडीयन्त तावन्तस्तस्यास्त्राञ्जलयो हृदः ॥[19]

अग्निष्टोम याग में 'अवभृथ' स्नान के पश्चात् 'आनुबन्ध्य' याग होता है उसमें वन्ध्या गौ का वध किया जाता है।[20] महाराज नल के नगर में कलि 'गोमेध' यज्ञ में वध के लिए खड़ी गौ को देखकर प्रसन्न हो उधर दौड़ा पर 'सोम देवताक' याग रूपी धर्म में आसक्त उस 'गौ' ने उस 'खर' अर्थात् दुष्ट कलि को अत्यन्त तिरस्कृत किया—

हिंसागवीं मखे वीक्ष्य रिरंसुर्धावति स्म सः ।
सा तु सौम्यवृषासक्ता खरं दूरान् निरास तम् ॥[21]

अर्थात् याज्ञिक ब्राह्मणों के मुख से उच्चारित हिंसार्थक 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' इत्यादि वाणी को सुनकर

कलि रमण करने की इच्छा करता हुआ कि ये पशुहिंसा रूप मेरा प्रिय कार्य करने का समर्थन कर रहें हैं, दौड़ा, किन्तु 'सोमदेवताकं' यज्ञ रूप धर्म में आसक्त उक्त वाणी ने यह विश्वास दिलाकर कि यह पशुहिंसा रूप कलिप्रिय करने वाली वाणी नहीं अपितु धर्म सम्बन्धिनी वाणी है, उस कलि को अत्यन्त तिरस्कृत कर दिया।

इन याज्ञिक विधियों के उल्लेखों के अतिरिक्त नैषध में यज्ञीय साधनभूत तत्त्वों स्रुवा, हवि, पुरोडाश, यूपस्तम्भ, कुशासन, यतियों, व्रतियों, ऋषियों, ब्रह्मचारियों, गायत्री, पुरश्चरण, मन्त्रादि अनुष्ठानों के वर्णनपरक अनेक स्थल उपलब्ध हैं। इन उद्धरणों से यज्ञ-यागादि से अनुष्ठित, वर्णाश्रम धर्म के अनुपालनार्थ तत्पर, अध्यात्म की भावना से अनुप्राणित वैदिक संस्कृति के प्रति श्रीहर्ष के विश्वास की सहज अभिव्यक्ति हो उठती है। प्रसङ्ग कलि द्वारा नलपुरी के अवलोकन का ही है—

नलपुरी में इतस्तत: विचरण करता कलि पुरोडाश को देखकर भय से विकल हो गया, स्रुवाओं को सर्पिणी समझते हुए उसके आंसू ही गिरने लगे, मुनियों के हाथ में आसनों को तथा आचमन करते हुए जल को देखता हुआ वह सोचने लगा कि ये मुझे मुद्गरों से मारने तथा जल से शाप देने हेतु उद्यत हैं।[22] मुञ्ज की बनी मेखला पहने व पलाश दण्ड हाथ में लिए ब्रह्मचारियों के साक्षात्कार से उसे अनुभूति हुई कि ये मुझे रस्सी से बांधने व दण्डे से मारने के लिए आ रहे हैं।[23]

ब्रहमविद्यामयी गायत्री का वेदों में प्रभूत महत्त्व वर्णित है।[24] **'तैत्तिरीय आरण्यक'** के षष्ठ प्रपाठक में वर्णन है कि गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से अर्घ्य देने पर पापों का प्रक्षालन हो जाता है। द्विजगण सन्ध्या क्रम में 'आगच्छ! वरदे! देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनी। गायत्रि! च्छन्दसां मातर्ब्रह्मविद्ये नमोऽस्तु ते'।।

'तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि'[25] कहते हुए इसका आह्वान करते हैं। यह परम्परा वैदिक धर्म में आस्थावान् द्विज आज भी निभाते हैं। राजा नल की नगरी में भी इसका अनुपालन वर्णित है। वहाँ द्विजों द्वारा आवाहित एवं उनकी अतिशय भक्ति के कारण सूर्यमण्डल से निकल कर पास आती हुई 'गायत्री' को देखकर विद्यमान कलि गायत्री के तेज से परास्त हो भाग कर छिप गया।[26]

'विद्यास्नातक', 'व्रत स्नातक' एवं 'उभय स्नातकों' को घातक, तपस्या के क्लेश सहन करने वालों दान्त तपस्वियों को यमराज के समान, वाचंयमों की दृष्टि को यमराज की दृष्टि के समान भयावनी पाकर कलि बहुत भयभीत हो गया।[27]

श्रुति ने देव सुरभियों का उत्तान चलना बताया है।[28] श्रीहर्ष इसका उल्लेख कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहते हैं—दमयन्ती के क्रीड़ा पर्वत की हरित रश्मियां बहुत ऊँचाई तक आकाश में चमकती हैं मानो नगरी ने गो ग्रास देने का जो पुण्य किया था वह वैदर्भी के क्रीड़ास्थल के मरकत शिखर से अंशु दर्भ (किरण रूपी कुश) के रूप में उत्पन्न होकर उठा और उठता चला गया। अन्त में किसी अन्य ब्रह्माण्ड से जा टकराया और इस प्रकार उसका वेगजनित मद चूर्ण हो गया जिससे वह लज्जावश अधोमुख हो लौटने लगा और लौटते समय रास्ते में ऊपर मुख करके चलने वाली देव गौ के मुख में जा पड़ा—

वेदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भैः
ब्रह्माण्डाघातभग्नस्यदजमदतया ह्रीधृतावाङ्मुखत्वैः ।
कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेशं गताग्रै-
र्यद् गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतमविश्रान्तमुज्जृम्भते स्म ॥[29]

अन्यत्र नलपार्श्ववर्तिनी दमयन्ती उनके द्वारा आग्रह किए जाने पर रात्रिकालीन विलसित चन्द्रमा का नाना प्रकार से वर्णन करने के क्रम में चन्द्रस्थ शश के सम्बन्ध में जो अनुमान करती है, वहाँ भी इसी वैदिक कथन की अभिव्यक्ति

हुई है। दमयन्ती कहती है कि चन्द्रमा का अङ्कगत शशक श्वेत कुक्षि (पेट) वाला है लेकिन उसका श्वेत कुक्षिगत भाग दिखाई नहीं पड़ता, अत: अनुमान लगाया जा सकता है कि वह उत्तान ही है। अर्थात् स्वर्ग की ओर मुख तथा भूलोक की ओर पीठ किए हुए है। यदि यह हमलोगों की ओर मुख किए होता तो चन्द्रकलङ्क भी स्वच्छ ही दृष्टिगोचर होता है। अत: ज्ञात होता है कि चन्द्रकलङ्कगत शशक ऊपर स्वर्ग की ओर मुख तथा भूलोक की ओर पीठ किए है और जिस कारण से स्वर्गस्थ शशक उत्तान हो स्थित है इसी कारण उत्तान भूलोक की ओर पीठ तथा स्वर्ग की ओर मुख करके देवों की गाएं चरती हैं, 'एतदर्थिका उत्ताना हि देवगवावहन्ति' इस श्रुति में मुझे विशेष श्रद्धा हो गई है।[30]

अग्निहोत्रादि में अग्नि के प्रज्ज्वलित करने के लिए जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उन्हें 'सामिधेनी' कहते हैं।[31] ये मन्त्र कई होते हैं[32] तथा इनका एक साथ प्रवचन होता है।[33] इन्हीं सामिधेनी मन्त्रों में कुछ अन्य मन्त्र भी जोड़ दिए जाते हैं जिन्हें 'धाय्या' कहते हैं। वे भी 'सामिधेनी' ही हैं।[34]

नैषध में हंस-नल संवाद में इस ओर भी संकेत है। हंस से नल कहते हैं—

अमितं मधु तत्कथा मम श्रवणप्राघुणकीकृता जनैः ।
मदनानल बोधनेभवेत् खग धाय्या धिगधैर्यधारिणः ॥[35]

हे हंस! जैसे 'धाय्या' ऋचा से अग्नि प्रदीप्त की जाती है, उसी प्रकार लोगों से सुनी हुई दमयन्ती की रूप चर्चा मधु मेरी कामाग्नि को प्रदीप्त कर रही है। धिक्कार है हम अधीर पुरुषों को।

नैषध में उपनिषदों का गम्भीर तत्त्व चिन्तन भी विभिन्न प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है। ब्रह्म वर्णन, आत्मा-परमात्मा का निरूपण, ब्रह्मात्मैक्य की विधि, साक्षात्कार दशा आदि का विस्तृत विवेचन विभिन्न उपनिषदों मे उपलब्ध है। **नैषधीयचरित** में भी कथाप्रवाह में ऐसे स्थल आ गए हैं।

श्रुति 'ब्रह्म' के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहती है—'तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति[36], 'आनन्दं ब्रह्मणोविद्वान्'[37], 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'[38], 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[39], 'यो न: पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा'[40], 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'[41], 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'[42], 'एकमेवाद्वितीयम्'[43], 'आधारमानन्दमखण्डबोधं यस्मिन् लयं याति पुरत्रयं च'[44], 'आनन्दाब्धिर्य: पर: सोऽहमस्मि प्रत्यग्धातुर्नात्र संशीतिरस्ति'[45] इत्यादि।

ब्रह्म की इस आनन्दरूपता का उल्लेख नैषध में अनेकत्र हुआ है। श्रीहर्ष नारद के इन्द्रलोक पहुँचने के प्रसंग में वेद के पूर्वोक्त मन्त्रादि की ओर संकेत करते हैं—जैसे योगी अनादि भवसिन्धु को पारकर आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है, उसी प्रकार देवर्षि नारद अनन्त आकाश के बीच से जाते हुए इन्द्र निकेतन पहुँच गए।[46]

'सर्वपूर्णस्वरूपोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षण:'[47], परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम्[48], नित्यबुद्धं विशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम्[49] इत्यादि श्रुति वाक्यों का चिन्तन अनेकत्र श्रीहर्ष की वाणी में झलकता है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग का वह स्थल दर्शनीय है जब निषधाधिपति नल क्रीड़ा सरोवर के तट पर रमणेच्छु हंसियों के कलरव में अनुरक्त एक अद्भुत स्वर्णिम हंस को देखते हैं जैसे योगी अपने शरीर में ही विद्यमान परमात्मा का बोध करता है—

पयोधि लक्ष्मीमुषि केलिपल्वले रिरंसुहंसीकलनादसादरम् ।
स तत्र चित्रं विचरन्तमन्तिके हिरण्मयं हंसमबोधि नैषधः ॥[50]

श्रुति कहती है कि तत्त्वज्ञान रूपी अग्नि के प्रज्वलन के साथ जितने भी शुभाशुभ कर्म, उनके कारणभूत अविद्या, ममता, राग द्वेषादि हैं उन सबका नाश हो जाता है, समस्त ग्रन्थियां खुल जाती हैं और समस्त संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं। एकमात्र नित्य, शुद्ध, बुद्ध आनन्दस्वरूप परमात्मा का ही अनुभव होता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥[51]

उस परम तत्त्व तक पहुँच कर कोई भय, कोई शोक, कोई मोह नहीं रह जाता। इस बात को **तैत्तिरीय उपनिषद्** इस प्रकार कहता है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कदाचनेति ॥[52]

अर्थात् मन के साथ वाणियाँ जिस तक न पहुँच कर जहाँ से लौट पड़ती हैं, ब्रह्म के उस आनन्द स्वरूप को जानने वाला किसी से भय नहीं करता।

इसी आनन्द की ओर संकेत करते हुए श्रीहर्ष नल के पञ्जर से मुक्ति से पाने वाले हंस का वर्णन करते हुए कहते हैं—

अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्तिं पुरुषोत्तमात्ततः ।

वचसामपि गोचरो न यः स तमानन्दमविन्दत द्विजः ॥[53]

जैसे भगवान् पुरुषोत्तम की कृपा से मुक्ति साधन भूत ज्ञान को पाकर कोई द्विज अवाङ्मनसगोचर रूप ब्रह्म का अनुभव करता है उसी प्रकार नल से मुक्ति पाने पर उस पक्षी को जो आनन्द हुआ उसका वर्णन मन तथा वाणी द्वारा अवर्णनीय था।

योगी की चित्तवृत्ति का निरूपण करती श्रुति कहती है—

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् ।

मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥[54]

अर्थात् यह सम्पूर्ण चराचर रूप द्वैत मनोदृश्य है अर्थात् मन की कल्पना मात्र है क्योंकि मन के रहने पर ही यह रहता है और न रहने पर नहीं रहता। समाधि के द्वारा मन का निरोध हो जाने पर द्वैत की उपलब्धि नहीं होती।

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।

अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥[55]

जिस समय चित्त न तो लय को प्राप्त होता है और न विक्षेप को तथा निर्वात दीपक के समान निश्चल होकर अपना अवभास भी खो देता है, उस समय वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है।

योगी की इसी निश्चल स्थिति का वर्णन नैषध के कई श्लोकों में साम्य प्रदर्शन हेतु आगत हैं। स्वर्णिम हंस के अकस्मात् उपवन में दमयन्ती के पास उतरने पर दमयन्ती की सखियों के नेत्र अपनी-अपनी दृश्यमान वस्तुओं को त्याग कर उस वर्णनातीत रूप वाले हंस में ऐसे जा लगे जैसे योगियों के चित्त सभी विषयों को त्याग कर अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म को प्राप्त होते है—

नेत्राणि वैदर्भसुता सखीनां विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि ।

प्रापुस्तमेकं निरूपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् ॥[56]

फिर जैसे अपने शरीर में ही सन्निहित ब्रह्म का आदरातिशय के साथ साक्षात्कार करने के लिए मुनि की मनोवृत्ति निश्चल हो जाती है, उसी प्रकार पास में चरते हुए हंस को डरते हुए हाथ से पकड़ने की अभिलाषा से दमयन्ती भी प्रयत्नपूर्वक निश्चल बन गई—

हंस तनौ सन्निहितं चरन्तं मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम् ।
ग्रहीतु कामादरिणा शयेन यत्लादसौ निश्चलतां जगाहे ॥[57]

वेदान्त में सांसारिक दशा को 'मोहदशा' तथा 'मोक्ष दशा' को आनन्द दशा कहा गया है। इसी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति नैषध में दर्शनीय है। नल को अकस्मात् अन्त:पुर में सम्मुख देख कर दमयन्ती को कुछ अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति हुई किन्तु ये अतिशय सुरक्षित अन्त:पुर में कैसे आए, ये वे नहीं हैं क्या? इस प्रकार अनिर्वचनीय भ्रान्ति भी हुई। इस प्रकार दमयन्ती उस समय एक साथ मुक्त व संसारी दोनों प्रकार के व्यक्तियों की दशा का अनुभव कर रही थी—

तत्कालमानन्दमयी भवन्ती भवत्तरानिर्वचनीयमोहा ।
सा मुक्तसंसारिदशारसाभ्यां द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्तमृष्टम् ॥[58]

'बृहदारण्यकोपनिषद्' के अनुसार स्वप्नावस्था में अविद्या की वृत्ति से पुरुष की अति सूक्ष्म हिता नाम की नाड़ियां शुक्ल, नील, पिङ्गल, हरित, लोहित रूप रस विशेषों से पूर्ण होती है, जिनमें द्वैत और भय की वासना रहती है। परन्तु अद्वयावस्था का सर्वात्म भावानुभव इसका परम लोक और अभय आप्तकाम और अकाम रूप होता है जिस स्वयं ज्योति आत्म स्वरूप में पिता, माता, पुण्य, पापादि सभी भेद नष्ट हो जाते हैं। उस अवस्था में उससे अन्य कुछ होता ही नहीं है जिससे द्रष्टा अपने को पृथक् देखे।[59]

इस औपनिषदिक सिद्धान्त की अभिव्यक्ति नैषध में समीक्षणीय है-जैसे कोई द्विज कुलोत्पन्न बटु भिक्षाटन करते हुए किसी द्विज श्रेष्ठ से हे सौम्य! जो अब द्वैत प्रपञ्च रूप से प्रतीत हो रहा है वह पहले सत् ब्रह्म ही एक और अद्वितीय ही था।[60] इस अद्वैत प्रतिपादक उपनिषद् वचन का अध्ययन करता है, उसी प्रकार वृक्षों से पुष्प फल रूपी भिक्षा प्राप्त कर अपनी वृत्ति चलाने वाले कोकिल पक्षी क्या दमयन्ती के मुख रूपी श्रेष्ठ ब्राह्मण से कामदेव के अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाली कोई उपनिषद् विद्या तो नही सीख रहा है—

प्रसूनबाणाद्वयवादिनी सा काचिद्द्विजेनोपनिषत् पिकेन ।
अस्या: किमास्य द्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजा तरुभ्य: ॥[61]

उपनिषदों के अनुसार दक्षिणायन के समय शरीर त्यागने वाले कर्मी गृहस्थ क्रम से मासाभिमानिनी देवताओं, पितृलोक, तथा आकाश प्राप्त करते हुए चन्द्रमा को प्राप्त करते हैं। यह चन्द्रमा सोमराज देवों का अन्न है, जिसका देवगण भक्षण करते हैं।[62] वे गृहस्थ इस चन्द्र को प्राप्त होकर अन्न बन जाते हैं और जैसे ऋत्विज यज्ञ में सोम का आप्यायन और अपक्षय करके भक्षण करते हैं वैसे ही देव लोग भी सोम लोक में शरीर पाने वाले कर्मियों का उपभोग करते है।[63] इस प्रकार चन्द्रमा के सायुज्य व सालोक्य प्राप्त लोगों की गति होती है।[64]

उपर्युक्त श्रुति वचन का प्रतिबिम्बन नैषध के कुछ स्थलों पर हुआ है। चन्द्रमा के रक्त वर्ण को देखकर नल दमयन्ती से कहते हैं- परशुराम ने सहस्रार्जुन का शिर काटकर उसके जिस रक्त से पितरों का तर्पण किया था, उसी रक्त ने मानों पितृलोक पहुँचकर इसे लाल वर्ण कर दिया है।[65]

इसी वैदिक उक्ति का आश्रय लेकर अन्यत्र कल्पना है-पुत्रों ने अपने पितरों को श्रद्धा सहित जो तिलाञ्जलि दी वह पितरों के लोक चन्द्रमण्डल चली जाती है, वहाँ वे तिल एकत्रित होकर कलंक रूप में श्याम वर्ण दिखाई देते हैं तथा वह जल चन्द्रमा का अमृत बन जाता है।[66] इसी प्रकार के कतिपय अन्य स्थल भी दर्शनीय हैं।[67] आत्मा की व्याख्या करते हुए याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से निष्कर्ष रूप में अन्त में कहा—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनोवा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।[68]

अरे मैत्रेयी! प्रथमत: आचार्य से और आगम से आत्मा का श्रवण करना चाहिए, तत्पश्चात् तर्क से मनन करना चाहिए तब निदिध्यासन करना चाहिए। इस प्रकार इन तीनों साधनाओं के सम्पूर्ण होने पर ही आत्म दर्शन होता है। अत: इन तीनों उपायों से पूर्ण अभ्यास पूर्वक आत्मा का श्रवण-मनन व निदिध्यासन होने पर यह सब प्रतीयमान विश्व प्रपञ्च विदित होता है।

इसी औपनिषदिक विश्वास की अभिव्यक्ति दमयन्ती द्वारा नल की प्राप्ति के लिए किए गये उपायों में दिखाई देती है। वैदर्भी दमयन्ती ने भी निषधाधिपति नल को पति रूप में पाने की बलवती कामना से प्रेरित हो तद्विषयक श्रवण, मानसिक भावनात्मक, दर्शन, मनन तथा एकाग्रतापूर्वक ध्यान के क्रमिक उपायों का अवलम्बन किया। भाव विह्वल हो वह हंस से आत्मकथा का निरूपण करते हुए कहती है—

श्रुत: स दृष्टश्च हरित्सुमोहाद्ध्यात: स नीरन्ध्रितबुद्धिधारम् ।
ममाद्य तत्प्राप्तिरसुव्ययो वा हस्ते तवास्ते द्वयमेक शेष: ॥[69]

मैनें उन्हें लोगों से सुना, उन्मादवश उन्हें चारों ओर देखा तथा एकाग्रचित्त से उनका ध्यान किया। अब मुझे या तो उनकी प्राप्ति या अपने प्राणों का नाश दो में से एक होना है और हंस वह तुम्हारे हाथ है। **छान्दोग्योपनिषद्** के अनुसार अन्तकालिक रोगी की जब तक वाणी मन में लीन नहीं हो जाती, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज पर देवता में तब तक उसे जानने पहचानने का होश रहता है। जब इसकी वाणी मन में मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज पर देवता में प्रविष्ट हो जाता है तब यहाँ मरता हुआ वह कुछ नहीं जानता। वर्णन है—

पुरुषं सौम्योपतापिनं ज्ञातय: पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति ।
तस्ययावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मन: प्राणे प्राणस्तेजसि तेज: परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥1॥
अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मन: प्राणे प्राणस्तेजसि तेज: परस्यां देवतायामथ नजानाति ॥2॥[70]

वृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार आत्मा के शरीर से उत्क्रमण करने पर प्राण वायु तथा उसके साथ ही अपान, उदान आदि वायु भी उत्क्रमण कर जाते हैं—

तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति ॥[71]

इस वैदिक सिद्धान्त की अभिव्यक्ति दूत रूप नल के सम्मुख नल विरह व्याकुलित दमयन्ती की उक्ति में हुई है। वह कहती है-हाय! ये तो युग बीत रहे हैं क्षण नहीं। मैं कब तक वेदना सहूंगी। मुझे तो मृत्यु भी नहीं है क्योंकि प्रिय मेरे अन्त:करण से अलग नहीं हो रहे हैं, मनप्रिय को नहीं छोड़ रहा है तथा प्राण मन को नहीं त्याग रहे हैं—

अमूनिगच्छन्ति युगानि न क्षण: कियत्सहिष्ये न हि मृत्युरस्ति मे ।
स मां न कान्त: स्फुटमन्तरुज्झिता न तं मनस्तच्च न कायवायव: ॥[72]

छान्दोग्य श्रुतिवाक्य[73] और उसके **शाङ्करभाष्य** के अनुसार केवल इष्ट (अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म) पूर्त (वापी, तडाग, उद्यानादि निर्माण) और दत्त (पात्रों को यथाशक्ति दान) का धर्म पालन करने वाले गृहस्थ जीव चन्द्रलोक में जाकर चन्द्रत्व (आप्य शरीर) को प्राप्त करके उस चन्द्रमण्डल में उस (इष्टापूर्त तथा दत्त रूप शुभ) कर्म के क्षयकाल तक निवास करके पुन: एक क्षण भी न रुख सकने से जिस मार्ग से गये थे उसी से लौट कर पुन: मर्त्यलोक में आते हैं।[74]

वेद की इसी मान्यता का स्मरण कर दमयन्ती चन्द्रमा को उपालम्भ देती है—

किमसुभिग्लपितैर्जड:मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुतामन: ।
मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नलमुखेन्दुपरां विबुध: स्मर: ॥[75]

अरे जड़! क्या तू यह समझता है कि प्राणों के निकलने पर दमयन्ती का मन मुझमें लीन हो जायगा? वस्तुत: वेद-व्याख्यान कर्ता विद्वान् स्मर ने उस ऋचा को मेरे विषय में नल मुखचन्द्र परक बतलाया है।

स्वप्न के विषय में श्रुति वचन है कि 'चैतन्य रूप ज्योति के स्वभाव वाला, जाग्रत स्वप्न, इहलोक परलोकादि में अकेला जाने वाला, अमरणशील, शरीर रूप निकृष्ट घोंसले की प्राण-अपान-उदान-समान और व्यान रूप पांचो वायुओं द्वारा पालन करने वाला आत्मा घोंसले के बाहर घूमकर जहां-जहां इच्छा होती है, वहाँ वहाँ स्वप्न में जाता है—

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा ।
स ईयतेऽमृतो यत्र कामं हिरण्मय: पुरुष: एकहंस: ॥[76]

इसी वैदिक सिद्धान्त का आश्रयण कर श्रीहर्ष दमयन्ती द्वारा स्वप्न में पहले कभी न देखे गए नल दर्शन का समाधान देते हैं-निद्रा ने दमयन्ती के निमीलित नेत्रों से तथा बाह्येन्द्रिय के अपने विषयों को ग्रहण न करने से सम्पुटित हृदय से भी छिपाकर पहले कभी न देखे गए अतिशय रहस्यभूत उस राजा को दिखा दिया।

यहाँ प्रश्न उठता है कि सुषुप्ति अवस्था में मन के व्यापार शून्य होने से दमयन्ती को उक्त ज्ञान किस प्रकार हुआ? वस्तुत: स्वप्न के पदार्थ बाह्येन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, अतएव केवल सुषुप्ति के ही विषय होते हैं। चूंकि आत्म रूप से स्फुरण में कोई बाधा नहीं होती अत: सुषुप्ति अवस्था में आत्मा का ही स्फुरण होता है। शंकराचार्य ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखा है स्वयं प्रकाश ही इन्द्रियों के उपरत हो जाने पर स्वप्न देखा करता है—

'उपरतेषु हीन्द्रियेषु स्वप्नान् पश्यति'[77] **इत्यादि**

छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय में सनत्कुमार मन्त्रविद् नारद को आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिचय देते हैं और सविस्तार निरूपित करते हैं कि किस प्रकार आत्मा या भूमा सारे भौतिक पदार्थों व मानसिक क्रियाकलापों से भिन्न है। वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, अप्, तेजस्. आकाश, स्मृति, आशा, प्राण सबसे आत्मा उत्कृष्ट है। आत्मा से ही इन सबकी सत्ता है। वह ऊपर नीचे इधर उधर सर्वत्र व्याप्त है। **छान्दोग्य उपनिषद्** के 26 खण्डों में विभक्त सप्तम अध्याय के इस भाव सार को नैषध में बड़े पाण्डित्य के साथ एक ही श्लोक में वर्णित किया गया है—

साऽनन्तानाप्य तेज: सखनिखिलमरुत्पार्थिवान् दिष्टभाज:
चित्तेनाशाजुषस्तान् सममसमगुणान् मुञ्चती गूढभावा ।
पारेवाग्वर्तिरूपं पुरुषमनु चिदम्भेधिमेकं शुभाङ्गी
नि: सीमानन्दमासीदुपनिषदुपमा तत्परीभूय भूय: ॥[78]

अर्थात् दमयन्ती उस समय उपनिषद् विद्या के समान हो गई। जिस प्रकार उपनिषद् विद्या पृथ्वी, अप्, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन तथा आत्मा इन नव द्रव्यों में आत्मा के अतिरिक्त शेष आठ द्रव्यों का एक साथ निषेध करती हुई गूढ़अभिप्राय युक्त हुई, मनोवचनातीत रूप वाले, अपरिमित आनन्द स्वरूप, चैतन्य रूप, ज्ञाननिधि परम पुरुष में ही तल्लीन रहती है उसी प्रकार शुभाङ्गी दमयन्ती भी अवर्णनीय सौन्दर्य वाले, अद्वितीय गुणों वाले असीम उत्साह युक्त पुरुष विशेष अर्थात् नल के प्रति आकृष्टमना होकर अद्वितीय गुणों वाले, असंख्य तेजस्वी देवताओं के प्रति परित्याग में तत्पर हो गई।

श्रुति आत्मज्ञानी के सर्वावाप्ति रूप फल का इस प्रकार वर्णन करती है—

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्व: कामयते यांश्चकामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकाम: ॥[79]

विशुद्ध सत्त्व वाला, निर्मल अन्त:करण वाला, आत्म ज्ञानी मन से जिस-जिस (पितृलोक आदि) का संकल्प करता है, जिन-जिन भोगों की कामना करता है, उन-उन भोगों को पाता है। इसलिए जो अपना वैभव चाहे वह ऐसे सत्य संकल्प और आत्मज्ञान से विशुद्ध अन्त:करण वाले का शुश्रूषा व नमस्कारादि से पूजन करे।

दमयन्ती विरह से व्याकुल उसके संदेश की बाट जोहते हंस की प्रतीक्षा करते नल की सेवा में उसके इच्छा करने मात्र से उपस्थित हंस को देखकर श्रीहर्ष को इस श्रुति वचन का स्मरण हो आता है और वे कह उठते हैं—

परवति दमयन्ति ! त्वां न किञ्चिद्वदामि द्रुतमुपनम किं मामाह सा शंस हंस ।
इति वदति नलेऽसौ तच्छशंसोपनम्रः प्रियमनु सुकृतां हि स्वस्पृहाया विलम्बः ।।[80]

इस प्रकार नैषध में अन्य अनेक स्थल हैं जहाँ वैदिक ज्ञान सलिला कवि वाणी से सहजतया सम्मिलित हो अनायास उस संगम में हम सभी सहृदयों को अवगाहन कराती हमें हमारी भारतीय संस्कृति के मूलभूत आदर्शों, परमपराओं, विश्वासों, तथा मूल्यों से सहजतया, सरसतया सुपरिचित कराती चलती है। नैषध में जिस समाज, जिस राज्य, जिस राजा का वर्णन हुआ है वह विशुद्ध वैदिक दृष्टि से अनुशंसित धर्मशास्त्रानुमोदित समाज है। उस पर किसी अन्य वैदेशिक धर्म की छाप नहीं है। विदर्भ एवं नल नगरी के निवासी चारों वर्णों के लोग अपने वर्णाश्रम धर्म का यथा सम्भव अनुपालन करते थे।[81] आतिथ्य का आदर्श इस प्रकार था कि अतिथि के आने पर सर्वप्रथम नमस्कार तथा प्रिय वचनों द्वारा उसकी कुशल क्षेम अवश्य पूछनी चाहिए। अतिथि के सामने अपने को तृण के समान नम्र बना देना चाहिए।[82] आतिथ्य के दान-दया तथा प्रिय व सत्य वचन आवश्यक अङ्ग माने जाते थे। राजा के यशस्वी होने में दान तथा पराक्रम दो गुण थे। **ऋग्वेद** की इस भावना कि सम्पन्न मनुष्य अवश्य ही याचना करने वाले को धन देकर उसे प्रसन्न करे, वह दूर तक के मार्ग के देखे अर्थात् दान से प्राप्त होने वाले पुण्य फलों पर दृष्टि रखे—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनुपश्येत पन्थाम् ।[83]

इस विषय में श्रीहर्ष का यह कथन कि 'जो दानी याचक की इच्छा को जानते हुए भी उसके कहने की प्रतीक्षा करते हैं, उसे निन्द्य समझना चाहिए।

वैदिक ऋषियों द्वारा दाम्पत्य, विवाह, कौटुम्बिक एवं पारिवारिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जो आदर्श चिन्तन प्रस्तुत किया गया उसकी सुरम्य अभिव्यक्ति नैषध में है। इस प्रकार इस नैषधीय काव्योदधि के संक्षिप्त आलोडन से निष्कर्ष रूप में जो बिन्दु उभर कर सहृदयों के समझ आते हैं उनके आधार पर यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष के इस काव्यामृत का पानक श्रुति स्मृत्यनुमोदित धर्मशास्त्रों व पुराणों से उपबृंहित **रामायण** व **महाभारत** की आदर्शात्मक संस्कृति से अनुप्राणित, कालिदास की अमरभारती से सुचिंतित वैदिक संस्कृति ही है जहाँ वर्णाश्रम धर्म का सम्यक् अनुपालन सदाचार का मान्य पथ है, राजा दानी व कर्तव्य निष्ठ है, स्त्रियां सतीत्व व्रतशालिनी, गुण संस्कार युता है। धन्य है श्रीहर्ष की साधना, धन्य हैं उनके आदर्श व सफल है उनका काव्यामृत प्रपाणक।

सन्दर्भ

1. वेदानुच्चरतां तत्र मुखादाकर्णयन् पदम् ।
   न प्रसारयितुं कालः कलिः पदमपारयत् ।। नैषध 17.163
2. श्रुतिपाठकवक्त्रेभ्यस्तत्राकर्णयतः क्रमम् ।
   क्रमः सङ्कुचितस्तस्य पुरे दूरमवर्तत ।। नैषध 17.164
3. तावद्गतिर्धृताटोपा पादयोस्तेन संहिता ।
   न वेदपाठिकण्ठेभ्यो यावदश्रावि संहिता ।। नैषध 17.165
4. तस्य होमाज्यगन्धेन नासा नाशमिवागमत् ।
   तथातत दृशौ नासौ क्रतुर्धूमकदर्थितः ।। नैषध 17.166
5. पुटपाकमसौ प्राप क्रतुशुष्ममहोष्मभिः ।
   तत्प्रत्यङ्गमिवाकर्त्ति पूर्तोभिव्यजनानिलैः ।। नैषध 17.168

6. स पाषण्डजनान्वेषी प्राप्नुवन् वेदपण्डितान् ।
जलार्थीवानलं प्राप्य पापस्तापादपासरत् ।। नैषध 17.185
7. दर्शस्य दर्शनात् कष्टमग्निष्टोमस्य चानशे ।
जूघूर्णे पौर्णमासेक्षी सौमं सोऽमन्यतान्तकम् ।। नैषध 17.196
8. सुरावान् वा एष वर्हिषद् यज्ञौ यत् सौत्रामणी: । शतपथ ब्रा० 12.8.1.2
सुरावन्तं वर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभि: ।
दधाना: सोमं दिवि देवतासु मदेमैन्द्रं यजमाना: स्वर्का: ।।
यस्ते रस: सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्म: सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ।।
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तं शुक्रं मधुमन्तमिन्दुं सोमं राजानमिह भक्षयामि ।।
यदत्र रिप्तं रंसिन: सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभि: ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ।। शुक्ल यजुर्वेद 19.32-35
9. मुमुदे मदिरादानं विदन्नेष द्विजन्मन: । दृष्ट्वा सौत्रामणीमिष्टिं तं कुर्वन्तमदूयत । नैषध 17.182
10. न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम्, छान्दोग्योपनिषद् 2.13.3
11. कम्रं तत्रोपनम्राया विश्वस्या वीक्ष्य तुष्टवान् ।
स मम्लौ तं विभाव्याथ वामदेवाभ्युपासकम् ।। नैषध 17.194
12. नैषधीयप्रकाश: 17.201 में नारायण एवं जीवातु 17.198 में मल्लिनाथ द्वारा उद्धृत ।
13. नैषध, 17.201
14. आननन्द निरीक्ष्यायं पुरे तत्रात्मघातिनम् ।
सर्वस्वारस्य यज्वानमेनं दृष्ट्वाऽथ विव्यथे ।। नैषध, 17.202
15. क्रतौ महाव्रते पश्यन् ब्रह्मचारीत्वरीरतम् ।
जज्ञौ यज्ञक्रियामज्ञ: स भाण्डाकाण्डताण्डवम् ।। वही 17.203। द्रष्टव्य 'जीवातु' टीका
16,17. ऋग्वेद संहिता 10.190
18. नैषध, 17.191
19. वही, 17.183
20. शुक्ल य० सं. अ. 6 के अनुसार वशामालभन्ते, शतपथ ब्राह्मण 4.5.2.11
21. नैषध, 17. 177
22. मुनीनां स वृसी: पाणौ पश्यन्नाचमतामप: ।
मेने घनैरमी हन्तुं शप्तुं मामद्भिरुद्यता: ।। नैषध, 17. 179
23. मौञ्जीधृतो धृताषाढानाशशङ्के स वर्णिन: ।
रज्जवाऽमी बद्धुमायान्ति हन्तुं दण्डेन मां तत: ।। नैषध, 17. 177
24. तैत्तिरीय आरण्यक, 6.26
25. शुक्ल यजुर्वेद 1.31
26. आवाहितां द्विजैस्तत्र गायत्रीमर्कमण्डलात् ।
स सन्निदधतीं पश्यन् दृष्टनष्टोऽभवद्भिया ।। नैषध, 17. 174
27. स्नातकं घातकं जज्ञे जज्ञौ दान्तं कृतान्तवत् ।
वाचंयमस्य दृष्ट्यैव यमस्येव विभाय स: ।। नैषध, 17. 184

28. उत्ताना हि देवगवा वहन्ति-आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 11.7.6
29. नैषध, 2. 105
30. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 11.7.6
31. इध्मेनाग्निं तस्मादिध्मो नाम समिन्धे ।
सामिधेनीभिर्होता तस्मान्तत्सामिधेन्यो नाम ।। शतपथ ब्राह्मण 1.3.5.1
32. अथ सामिधेन्यः । प्र वो वाजा (ऋग्वेद 3.27.1)
अग्न आयाहि वीतये गृणानः (ऋ. 6.16.10)
ईडेन्यो नमस्यस्तिरो....(3.27.13) अग्निं दूतं वृणीमहे (1.12.1) समिद्धो अग्न
आहुतेति द्वे (5.28.5) आश्वलायन श्रौतसूत्र 1.2.7
33. ता एकश्रुतिसन्ततमनुब्रूयात्, आश्वलायन श्रौतसूत्र, 1.2.8
34. तस्मादुपरिष्टादेव ध्याय्येदध्यात् । शतपथब्राह्मण, 1.4.1.37
35. नैषध 2.56
36. मुण्डकोपनिषद्, 2.2.8
37. आनन्दं ब्रह्मणोविद्वान्
38. तत्रैव 3.6
39. तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1
40. ऋग्वेद संहिता 10.82.3
41. कठोपनिषद् 2.2.15
42. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.28
43. छान्दोग्योपनिषद् 6.2.1
44. कैवल्योपनिषद्, 14
45. मैत्रेय्युपनिषद्, 1.11
46. नैषध, 5.8
47. मैत्रेय्युपनिषद्, 3.12
48. तेजोबिन्दूपनिषद्, 3.1
49. तत्रैव 3.11
50. नैषध 1.117
51. मुण्डकोपनिषद्, 2.2.8
52. तैत्तिरीयोपनिषद् 2.4
53. नैषध 2.1
54. माण्डूक्यकारिका 3.31
55. वही, 3.46
56. नैषध 3.3
57. वही 3.4
58. वही 8.15
59. न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते विनाशित्वात्।
न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद् विभक्तं यत्पश्येत्।।
बृहदारण्यकोपनिषद् 4.3.23
60. सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
छान्दोग्योपनिषद् 6.2.1
61. नैषध 7.48
62. छान्दोग्योपनिषद् 5.10.4
63. बृहदारण्यकोपनिषद् 6.2.1
64. नारायणोपनिषद् 80
65. नैषध, 22.48
66. वही 22.119
67. वही 4.61, 22.67
68. बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5
69. नैषध 3.82
70. छान्दोग्योपनिषद् 6.15.1-2
71. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.2
72. नैषध 9.94
73. तस्मिन् यावत् सम्पातमुषित्वा-छान्दोग्योपनिषद् 5.10.5
74. छान्दोग्योपनिषद, 5.10.3-5
75. नैषध, 4.52
76. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.3.12
77. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.2 शाङ्करभाष्य
78. नैषध 11.129
79. मुण्डकोपनिषद् 3.1.10
80. नैषध, 3.134
81. वही 7.48, 8.42, 1.49, 17.180, 17.187
82. वही 10.27, 10.28, 5.9, 17.167
83. ऋग्वेद 10.117.5